श्रीसूर्यनारायण व्यास
पद्मविभूषण, ज्योतिषाचार्य, डी० लिट्०

कालिदास और विक्रम पर एक विचार

अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुरूप भास का काल चाणक्य और चन्द्रगुप्त का था. नाट्य-कला के मार्गदर्शक होने के कारण भास की कीर्ति उस समय पर्याप्त रही होगी. विदिशा के शुंगों के शासन के समय से ही कवियों की वाणी और नाट्य-कला में पर्याप्त विकास तथा भाषा में संस्कार हो गया था. भासकाल की अपेक्षा पर्याप्त विकास विदित होता है. संस्कृत को तब लोकभाषा का सम्मान सुलभ हो गया था. पाणिनि के प्रयोग उतने प्रचलित नहीं हो पाये थे. नाट्यकला सुविकसित, नियमबद्ध नहीं हो पाई थी. अभी तक भास के पूर्ववासियों के नाटक प्रकाश में नहीं आये हैं. परन्तु भास के नाटक विविध भेदों में प्रकाश का विषय बन चुके थे. इससे यह विदित हो सकता है कि इस कला में वह काल कितना प्रगतिशील था.

मेकडॉनल्ड, कीथ प्रभृति पंडितों की यह मान्यता कि भरत में ग्रीस की नाट्य-कला का अनुसरण हुआ है क्योंकि ई० स० पूर्व तीसरी शती में भारत का ग्रीस से व्यवहार होता था. सेल्यूकस ने अपनी लड़की चन्द्रगुप्त को दी थी. टॉलमी का भी आवागमन बना रहता था. तथा एक दूसरे के राजदूतों का व्यवहार जारी था. आलक्जेण्डर के शासन से भृगु-कच्छ द्वारा-नर्मदा-पथ से स्थलमार्ग द्वारा उज्जैन से सम्बन्ध बना हुआ था. विदिशा में स्वयं वहाँ का राजदूत हेलियो डोरस रहता था. यही नहीं, उसने भागवत-धर्म भी स्वीकार कर लिया था, यह विदिशा का गरुड-स्तम्भ साक्षी दे रहा है. ग्रीक इतिहास से प्रकट है कि ब्राह्मण लोग ग्रीस के साहित्य में अनुराग भी रखते थे. किन्तु भारत का नाट्य ग्रंथ अधिक पुरातन है, भास के नाटकों में विशेष रूप से उनका अनुकरण प्रतीत होता है. सम्भव है भास की उन्नति और कीर्ति ने कालिदास को स्पर्धा के लिये बाध्य किया हो और इसी के वश हो कालिदास ने अपने नाटकों में कला का पूर्ण परिपाक बतलाया हो. संभवतः कालिदास ने भास का इसी कारण नामोल्लेख कर नाट्यजगत् में अभिनव प्रवेश मालविकाग्निमित्र के रूप में किया हो. अनेक अंशों में राजा, नायिका, उपनायिका, विदूषक चेटी आदि की जो समता भास और कालिदास में मिलती है और उनका विकास जितनी सुन्दरता से कालिदास-कृति में मिलता है, उतना भास में नहीं. वैसे भी भास—कालिदास के काल में समता को लक्ष्य में रखते हुए १००-१२५ वर्ष का ही अन्तर लक्षित होता है. उसने अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ भास की कला को विकसित कर तथा अग्निमित्र जैसे अल्प प्रसिद्ध युवराज का आश्रय लेकर किया होगा और कीर्तिशाली बन गया होगा. दिङ्नाग, प्रव्रज्या, भिक्षुणी आदि का उल्लेख बुद्धप्रभाव को प्रकट करता है. शुंग-काल तक यह प्रभाव मध्य भारत में रहा है. वासवदत्ता के अपहरण के समय प्रच्छन्नवेष में निर्ग्रन्थ भिक्षुओं का प्रवेश होने लग गया था, अन्यथा, विक्रम की समुन्नति से कालिदास की कला उल्लेखरहित नहीं रहती. अस्तु, यहाँ हमारा अभिप्राय तर्कों और उदाहरणों से विस्तार करना नहीं है. कालिदास की तरह ही विक्रम भी विद्वज्जनों की विचार-विश्लेषण की परिधि में परिभ्रमण कर रहा है. विक्रमादित्य के विषय में भी दो विचारधाराएँ हैं. प्रथम धारा विक्रम को ई० सन् पूर्व ५७ वर्ष में स्वीकार करती है, और दूसरी द्वितीय चन्द्रगुप्त को ही एकाधिकार प्रदान करती है. यह आज से नहीं शताब्दियों पूर्व से है. पिछले विद्वानों को इस द्वैत का पूर्ण ज्ञान रहा है, किन्तु जो लोग स्मिथ को मील का पत्थर मानकर अपनी प्रज्ञा के प्रयास की परिधि केन्द्रित कर देते हैं उनके ज्ञान की परप्रेरितावस्था पर खेद प्रकट करना भी निरर्थक है. ये द्वितीय चन्द्रगुप्त को छोड़कर अपने ज्ञान की दौड़ को आगे का श्रम ही स्वीकार नहीं करते.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज से बहुत पूर्व ११ वीं शती में सोमदेव ने कथासरित्सागर की रचना की है. उस समय सोमदेव को दो विक्रम होने का पूर्ण ज्ञान था. यह ग्रंथ द्वितीय विक्रम के पश्चात् ही बना है. उस समय यदि प्रथम विक्रम की ख्याति न होती तो वह एक ही का उल्लेख कर सकता था. उसे काल्पनिक—भ्रमविस्तार की आवश्यकता क्यों होती ? इस कथाग्रंथ के रचना-काल में सोमदेव यह स्पष्ट जानता है कि उज्जैन का विश्रुत नरेश विक्रम है, और पाटलिपुत्र का अन्य विक्रम भी है. उक्त कथाग्रंथ के १८ वें लम्बक, प्रथम तरंग में स्पष्ट है—

(क) उज्जयिन्यां सुतः शूरो, महेन्द्रादित्यभूपतेः ।
(ख) आक्रमिष्यति सद्वीपां पृथिवीं, विक्रमेण यः ।
म्लेच्छसंघान् हनिष्यति ।
(ग) भविष्यत एवैष विक्रमादित्यसंज्ञकः ।

इस तरह विभिन्न स्थानों पर उज्जैन के विक्रम का उत्कृष्ट वर्णन किया है. आगे इसी लम्बक के तृतीय तरंग में विक्रम की विजययात्रा से वापिस उज्जैन पहुँच जाने पर उनके सेनानी विक्रमशक्ति ने उन अनेक राजाओं का, जो स्वागतार्थ उपस्थित थे, वर्णन किया है. यह वर्णन तत्कालीन स्थिति जानने में सहायक हो सकता है:

"गौडः शक्ति कुमारोऽयम्, कर्णाटोऽयं जयध्वजः ।
लाटो विजयवर्माऽयम् काश्मीरोऽयं सुनन्दनः ।
गोपालः सिन्धुराजोऽयम्, भिल्लो बिन्ध्यबलोप्ययम् ।
निर्मूकः पारसीकोऽयम्, नृपः प्रणमति प्रभो ।"

इन विविध देशीय नरेशों के प्रणाम-परिचय के पश्चात्—

सम्राट् सम्मानयामास सामन्तान्सैनिकानपि ।

सम्राट् विक्रम ने सामन्तों और सैनिकों का सम्मान किया है. इस प्रकार १८ वाँ लम्बक अवंतीपति के वर्णन से भरा हुआ है. और उक्त ग्रंथ में चौथी तरंग, एवं सप्तम लम्बक में स्वतंत्र रूप से लिखा है कि–'विक्रमादित्य इप्यासीद्राजा पाटलिपुत्रके' यानी पाटलिपुत्र में राजा विक्रम था. यहां 'सम्राट्' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है. तथा–'अस्ति पाटलिपुत्राख्यो भुवोऽलकंरणंपुरम्, तत्र विक्रमतुंगाख्यो राजा' आदि.

इस प्रकार विक्रम के दो होने की जानकारी ११वीं शती के सोमदेव को अवश्य थी, क्षेमेन्द्र, और गुणाढ्य भी यह जानते थे. ये ग्रंथकार चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद हैं. यदि एक मात्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ही विक्रम होता तो इन्हें उज्जैन के और पाटिलपुत्र के दो विक्रमों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं रहती. ये आज से सैकड़ों साल पहिले उत्पन्न ग्रंथकार हैं. स्मिथ की भ्रान्ति इन्हें स्पर्श नहीं कर सकती है. और इनके उल्लेख को महज कथा कहकर टाला नहीं जा सकता. ऐसी स्थिति में स्मिथ, हार्नेल, कीथ आदि आधुनिकों की भ्रान्त धारणाओं का कोई मूल्य नहीं रहता. विक्रमादित्य को केवल विदेशी विद्वानों की कसौटी पर नहीं लगाया जा सकता, उसके तथ्यान्वेषण के लिये प्राचीन साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है.

संस्कृति के कथाग्रंथों, काव्यवर्णनों की तरह ही जैन-साहित्य के अनेक ग्रंथों में, जिनकी संख्या ५० से अधिक है, स्वतंत्र उज्जयिनीपति विक्रम की विभिन्न चर्चाएँ आई हैं. कालक-कथा आदि को केवल कथा-ग्रंथ कहकर हम उपेक्षित नहीं कर सकते. इन सभी पर तथ्यान्वेषक दृष्टि से विचार किया जाना जरूरी है. ये अपना महत्त्व रखते हैं तथा इतिहास और तथ्य पर आधारित हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org